अध्याय : 3

मोहन राकेश के नाटकों में यथार्थता

अध्याय : 3

मोहन राकेश के नाटकों में यथार्थता

"यथार्थवाद साहित्य में एक शैली नहीं बल्कि एक विचारधारा है।"

- कजामियाँ

यथार्थवाद यूरोपीय चिन्तन की देन है। अंग्रेजी में इसे Realism कहा गया है। जो जैसा है उसी रूप में प्रस्तुत करने को यथार्थ कहा जाता है। व्यक्ति अपनी इंद्रियों द्वारा जो सत्य का अन्वेषण कर रहा है, वहीं से यथार्थवाद का प्रारम्भ हुआ है। पश्चिम में देकार्त के दर्शन में इस सिद्धान्त की जड़े मिलती हैं। आधुनिक काल में आप्त वचन का स्वीकार न कर सत्य का अनुसंधान यथार्थवाद का आधार रहा है। नाटक साहित्य में यह वाद चरित्र-चित्रण के माध्यम से अवतरित हुआ। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः समाज में रहने से उसके सूक्ष्म, जटिल, उलझे हुए सम्बन्ध स्थापित होते जाते हैं। मनुष्य और समाज दोनों परिवर्तनशील होने से दोनों के सम्बन्ध बदलते रहते हैं। मनुष्य अपने परिवेश में संघर्ष करता हुआ दीखता है इसलिए उसका चित्रण होना स्वाभाविक है। यथार्थवाद के विकास में चार्ल्स डार्विन, सिगमण्ड फ्रायड तथा कार्ल मार्क्स के विचारों ने बड़ा योगदान दिया है। इसलिए यथार्थवाद में एक ओर सामाजिक जीवन की समस्याओं का चित्रण होता गया तो दूसरी ओर चरित्र की गुत्थियों को सामने रखा गया। इसमें मानव की कमजोरियाँ, क्रूरता, विषमता आदि को दिखाया जाता रहा जिससे निराशावादी दृष्टि बनती गयी। साथ ही यह हमारी स्थिति, प्रश्नों के बारें में सोचने के लिए बाध्य करता है। आधुनिक विशेषतः स्वातंत्र्योत्तर काल के लेखकों ने जिस यथार्थवाद का चित्रण किया है इसके कारण पाठक अंतर्मुख होकर सोचने को बाध्य हुआ है।

हिन्दी नाट्य-साहित्य का इतिहास देखा जाये तो हमें दिखायी देगा कि, जयशंकर प्रसाद एक आदर्श मानस के रचनाकार हुए हैं। इतिहास द्वारा आदर्श जीवन को प्रस्तुत किया पर वे भी समस्याओं के घेरे में आये और उन्होंने ध्रुवस्वामिनी में नारी की सामाजिक स्थिति को प्रस्तुत किया। प्रसादजी के पश्चात् हरिकृष्ण प्रेमी उदयशंकर भट्ट, गोविंद वल्लभ पंत, रामवृक्ष बेनापुरी, चतुरसेन शास्त्री ने प्रसाद परम्परा को बनाये रखा। वैज्ञानिक प्रगति के साथ नवीन चेतना ने भावना से बढ़कर बौद्धिकता को प्रधानता दी। इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ा। नाटक में दृश्य रूप में अधिक दिखायी देने लगा। यही कारण है कि नाटक जन-जीवन तथा यथार्थ के अधिक निकट आया। आधुनिक काल के नाटककारों पर पाश्चात्य नाटककारों का विशेषतः इब्सेन, शॉ आदि का प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि हिन्दी नाटक की परंपरा में यथार्थवादी नाटक लिखे जाने लगे।

नयी शिक्षा प्रणाली के कारण नयी पीढ़ी में नये पुराने का द्वंद निर्माण हुआ। अधिकार के पीछे लगा मनुष्य कर्तव्य को भूलने लगा। व्यक्ति स्वार्थ में डूबा परिणामतः त्याग, तपस्या, सदाचार की नींव डगमगा गयी। आत्महत्या, अवैध प्रेम, छल आदि का जीवन में प्रवेश होने से जीवन जटिल बना। यहीं से पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया भी शुरू हुई है। इस काल में जीवन की बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या की जाने लगी। समसामयिक जीवन की समस्याओं ने लेखकों को हिला दिया। ये समस्यायें व्यक्ति समाज, देश संबंधी रही है। परिणामतः यथार्थवादी नाटकों में व्यक्ति और परिवेश के कारण निर्मित समस्याओं को प्रधानता मिलती गयी। यही धारा समस्या नाटक की परंपरा के नाम से पहचाने जाने लगी। इसमें सिद्धान्त रूप में बौद्धिकता का समर्थन और भावुकता का विरोध किया जाने लगा। इसलिए इतिहास की अपेक्षा प्रतिदिन की समस्या को प्रस्तुत करने लगा।

राकेश संवेदनशील मन के साहित्यकार थे। राकेश के जीवन में प्रेम और आस्था का सदैव अभाव रहा है। शायद यही कारण है कि यथार्थ जीवन और कल्पना जगत् के जीवन में जमीन आसमान का फर्क है। राकेश अपने मनमाने ढंग से जीवन गुजारना चाहते थे, राकेश को पद-पद पर जीवन की समस्या का सामना करना पड़ा। इस संघर्ष में कवि मन तो टूट गया और इसीके साथ कल्पना में विहार

करने वाले राकेश का जीवन भी पीसता रहा।

राकेश का नाट्य-साहित्य इस बात का गवाह है कि प्रेम और आस्था को जीवन की सबसे बड़ी पूँजी समझकर जीवन बिताने वाले व्यक्ति अंत में कठोर यथार्थ के सामने झुक जाते हैं, टूट जाते हैं। राकेश के साहित्य में प्रेम के कई रूप दिखायी देते हैं। नाटकों में प्रेम का स्वरूप विकसनशील रहा है। कल्पना और भारतीय परम्परा के नुसार उदात्त प्रेम रूप का आधार लेता नाटक "आषाढ़ का एक दिन" यथार्थ से सामना करते करते "आधे अधूरे" नाटक के दिखावे के प्रेम तक आ पहुँचा है।

"आषाढ़ का एक दिन" (1958) में नायक-नायिका भावना के स्तर पर जीते व्यक्तित्व हैं। भौतिक सम्बन्धों की अपेक्षा भावना के सम्बन्ध को महत्व देते हैं। "आषाढ़ का एक दिन" नाटक में राकेश की यथार्थ चेतना स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। कल्पना के सामने यथार्थ को खड़ा किया जाये तो यथार्थ अपने पूरी शक्ति के साथ व्यक्त होता है। इस नाटक में यथार्थ और भावना एक-दूसरे के सामने खड़े हैं। भावना जगत् में जीते कालिदास और मल्लिका तथा "यथार्थ" के पक्ष में खड़े अम्बिका, मातूल और विलोम हैं। इन पात्रों द्वारा राकेश ने कल्पना और यथार्थ का संघर्ष व्यक्त किया है।

मल्लिका कल्पना जगत् में स्वच्छंद विचरण करने वाली भावुक ग्रामकन्या है। कालिदास भी ऐसा ही कवि मन का युवक है। दोनों की अपनी अलग एक दुनिया है। इस दुनिया में यथार्थ की कोई चिंता नहीं है सिर्फ भावना है प्रेम है और सौन्दर्य है। ग्रामवासियों के तानों की चिंता किए बिना ही कालिदास के साथ आषाढ़ के धारासार वर्षा में भीगती वर्षा का सौन्दर्य निहारती है। कालिदास और मल्लिका का सम्बन्ध में फैले अपवादों से मल्लिका का विवाह नहीं हो रहा है, लेकिन इस बात से मल्लिका को कोई फर्क नहीं पडता है। मल्लिका कालिदास से प्रेम करती है। मल्लिका का कहना है मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपत्ति है, किसी को उस पर आलोचना करने का अधिकार नहीं है। मल्लिका अपने प्रेम के प्रति अपराध का अनुभव नहीं करती।

"मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब संबंधों से बडा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।" अम्बिका मल्लिका की माँ है जो जीवन में दुःख भोग चुकी है। कालिदास से विवाह करने में अम्बिका को कोई आपत्ति नहीं है। कालिदास की आर्थिक परिस्थिति और आश्रित जीवन से मल्लिका की गाँठ बांधना एक माँ कैसे कर सकती है ? अम्बिका का कालिदास के प्रति सख्त विरोध है, घृणा करती है। अम्बिका जीवन के यथार्थ को भोग चुकी है, वह लोक-व्यवहार जानती है। जीवन के कटु यथार्थ से अम्बिका आँखें मूँद नहीं सकती। भावना में एक भावना का वरण उसे पसन्द नहीं है। अम्बिका पुराने विचारों की नारी है। आधुनिक युग के परिवेश के कारण मल्लिका में जो स्वच्छंदता आयी है, जो अम्बिका को पसन्द नहीं है। यथार्थ की जमीन पर जी रही अम्बिका जानती है भावना जीवन की आवश्यकता पूरी नहीं कर सकती।

मल्लिका का प्रेमी आत्म-सीमित है, और यह बात आगे चलकर सिद्ध भी होती है। अम्बिका मल्लिका के भविष्य के साथ अपने लिए भी चिंतित है। इन सब कठिनाईयों से सचेत करने के बावजूद मल्लिका वही करती है जो अम्बिका को पसन्द नहीं है। प्रेम की भावना से अपनी पूरी जिंदगी शून्य बना देती है।

मल्लिका और अम्बिका में यह कल्पना और यथार्थ का संघर्ष है। अन्त में कल्पना का जगत् टूटकर बिखर जाता है। कालिदास अपने ही जग में खो गया और भावना के सहारे जीवित रही मल्लिका सबकुछ हार गयी। अंत में मल्लिका जीवन के ऐसे मोड़ पर खड़ी है कि आगे अंधकार के सिवाय कुछ नहीं है, जिस प्रेम के आधार पर जीती रही वही भी हाथ में रहा नहीं। भावना जीवन की आवश्यकताएँ पूरी नहीं करती। जीवन की आवश्यकता पूरी करने के लिए आर्थिक आधार आवश्यक होता है, कालिदास के पास धन होता तो मल्लिका का जीवन सुखी होता, साथ में कालिदास के कल्पना का संसार यथार्थ में उभरता। ऐसा ही यथार्थ है जो कल्पना में रमने वाले जीवों को यथार्थ की धरती पर ला कर पटक देता है।

"आषाढ़ का एक दिन" नाटक में राकेश ने इसी समस्या की ओर निर्देशन किया है कि सिर्फ भावना जीवन के लिए काफी नहीं है। भौतिक आवश्यकताएँ भावना पर मात कर जाती है।

कलाकार के साहित्य-सृजन एवं व्यक्तित्व निर्माण में परिवेश का बडा सहयोग होता है। हर व्यक्ति पर परिवेश का परिणाम होता है लेकिन कलाकार पर गहरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि कलाकार मूलतः भावनाशील एवं संवेदनशील होता है। परिवेश से व्यक्तित्व के साथ जीवन की दिशा भी बदलती है। अनुकुल वातावरण कलाकार को महान बनाता है और प्रतिकुल वातावरण कलाकार को उखाड़ फेंकने में समर्थ होता है। कलाकार की जीवन इच्छा अपने अस्तित्व के लिए पूरी ताकत से लड़ती है। "आषाढ़ का एक दिन" नाटक में ऐसा ही एक संघर्ष बिंदू है। परिवेश से टूटा कलाकार जग में कहीं भी जाये अपनी भूमि से उसे लगाव रहता है। परिवेश से जो ग्रहण किया जाता है साहित्य द्वारा वही वापस दिया जाता है।

कालिदास को राज्य सम्मान प्राप्त होता है और उसे राजकवि का पद ग्रहण करने के लिए उज्जयिनी जाना पड़ता है। उज्जयिनी में कालिदास का उज्ज्वल भविष्य उसकी राह देख रहा है। मल्लिका इस बात से संतुष्ट है कि कालिदास की प्रतिभा को नयी दिशा मिल जायेगी। अपने प्रेमी के भविष्य के लिए मल्लिका वियोग सहन करने की तैयारी करती है। कालिदास को मल्लिका का वियोग और परिवेश से दूर जाने की समस्या ने द्विधा अवस्था में डाल दिया है। क्योंकि कालिदास का व्यक्तित्व गाँव के वातावरण के साथ एकाकार हो गया है। कालिदास कहता है - "मैं अनुभव करता हूँ यह ग्रामप्रांतर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और यह मेघ हैं, यहाँ की हरियाली है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं।"[1]

गाँव की प्रकृति के कण-कण के साथ कालिदास की भावनायें जुड़ी हैं। कालिदास को भय है कि गाँव छोड़ने पर वह अपनी भूमि से उखड़ जायेगा। कालिदास उज्जयिनी चला जाता है और सच ही में उसका जीवन बदल जाता है। संपत्ति

के साथ-साथ कीर्ति भी मिलती है। राजदुहिता के साथ विवाह हो जाता है। कश्मीर शासक का भार सम्हालते वह "कुमार संभव", "मेघदूत", "रघुवंश" आदि महान कृतियों की रचना करता है; जिसका प्रेरणास्त्रोत ग्राम प्रांतर रहा है।

वास्तव में इस महाकाव्य में ऐसे व्यक्ति की पीड़ा है जो अपने परिवेश से कट गया है। कालिदास स्वयं अपने परिवेश से दूर आने की पीड़ा भोग रहा था। इन सभी रचनाओं का आधार पुराना परिवेश और कालिदास का प्रेम मल्लिका है। मल्लिका से वियोग की घुटन कालिदास को सुख से वंचित करती है। अत्यधिक सुविधाओं के बीच रहते कालिदास अकेलापन महसूस करता है। यही आकुलाहट साहित्य द्वारा व्यक्त होती है। मल्लिका कालिदास की प्रेरणा थी, प्रतिभा शक्ति थी। इसे गाँव में छोड़कर आया कालिदास नये परिवेश से कुछ नया ग्रहण करने में असमर्थ है। घुटन का अनुभव करता है और उससे उबरने के लिये उसके मन में संघर्ष चलता है, अतः सब सम्मान छोडकर कालिदास अपने गाँव लौटता है।

यह संघर्ष और गहरा होता है जब कालिदास कश्मीर का शासनभार सँभालता है। राजनीति के वातावरण में कवि का मन घुटन महसूस करता है। राज्य सम्मान और कवि के बीच यहाँ संघर्ष होता दिखायी देता है। आज आधुनिक युग में परिस्थिति है कि अपने साहित्य पर जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करना मुश्किल बात है। सत्ता साहित्यकार को सम्मान देकर खरीदना चाहती है। आज के संदर्भ में राज्याश्रय एक ज्वलंत समस्या है। राज्यसभा की सदस्यता, बडे-बडे पद और पुरस्कार आदि कई प्रलोभनों से आज का लेखक अपनी सर्जनशक्ति खो रहा है। राज्याश्रय व्यक्ति की स्वतंत्रता छीन लेता है। कालिदास को राजसत्ता के मोह से सबकुछ गँवाना पडा है, यहाँ तक कि अपनी प्रतिभाशक्ति मल्लिका से भी हाथ धोना पड़ा। नाटक के प्रारंभ में ही राकेश ने राजसत्ता की नृशंसता का संकेत दिया है। हरिणशावक का शिकार उनमें से एक है।

इस नाटक में राजसत्ता और लेखन को एक-दूसरे के विरोध में खड़ा किया है। राजकीय मुद्राओं से क्रीत न होने वाला कालिदास अपने आर्थिक अभाव के पूर्ति के लिए क्रीत होता है। अस्वाभाविक वातावरण और जीवन में कालिदास घुटन अनुभव

करता है। यह सभी लेखकों की समस्या है, राकेश ने ये पीड़ा स्वयं भोगी थी। राकेश को आर्थिक स्वावलंबन के लिए सत्ता या नौकरी के सामने झूकना पडा और वहाँ राकेश ऊब अनुभव करते थे। नौकरी से त्यागपत्र देना यही सिद्ध करता है कि एक सृजनशील कलाकार के लिए बंधन स्वीकारना कठिन होता है। राकेश अपने विचार कालिदास के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते हैं - "मैं नहीं जानता था अभाव और सम्मान के वातावरण में जाकर मैं कैसा अनुभव करूँगा। मन में कहीं यह एक आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा।"[2]

जो आर्थिक अभाव कालिदास को मल्लिका से छिनकर ले गया। वही अभाव मल्लिका के लिए शाप बन गया। मल्लिका विलोम से घृणा करती है। अपने जीवनावश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति का यह परिणाम है कि मल्लिका विलोम के बच्ची की माँ बन गयी है। समय और इच्छा कभी एक साथ नहीं चलती। समय व्यक्ति के लौटने की राह नहीं देखता। कालिदास का विश्वास था कि जब वह वापस लौटेगा मल्लिका उसी हालत में होगी जैसे पहले थी। कालिदास का विश्वास समय के साथ टूट गया। समय प्रारंभ से अंत तक बलवान रहा है। कालिदास और मल्लिका के कल्पना और आकांक्षाओं के पंख समय के एक झोंके के साथ टूट जाते हैं।

समय का निर्मम प्रहार मल्लिका अंत तक झेलती है। प्रेमी से वियोग, प्रेमी का गाँव आकर न मिले ही वापस लौटना और अनचाहे व्यक्ति के द्वारा अभावों की पूर्ति करना यह सब समय के प्रहार ही हैं। विलोम समय की ताकत को जानता है। वह कालिदास से कहता है - "समय निर्दय नहीं है। उसने औरों को भी सत्ता दी है। अधिकार दिए हैं। वह धूप और नैवेद्य के लिए घर की देहली पर रूका नहीं रहा। उसने औरों को भी अवसर दिया है। निर्माण किया है।"[3]

बलवान समय ने एक बाजी विलोम को दे दी और विलोम यह बाजी जीत गया। कालिदास का सुख चैन और प्रेम सबकुछ पर अधिकार कर गया। कालिदास समय के चक्र को उल्टा घुमाने का असफल प्रयास करना चाहता है और यह बात

मुश्किल ही नहीं नामुमकीन है। कालिदास कहता है - "मैंने कहा था मैं अथ से प्रारम्भ करना चाहता हूँ। यह संभवतः इच्छा का समय के साथ द्वन्द था। परन्तु देख रहा हूँ कि समय अधिक शक्तिशाली है।"[4]

यही सत्य है। यही यथार्थ है, राकेश ने मिथक द्वारा उसी यथार्थ को व्यक्त किया है। राकेश हमेशा मानव की शाश्वत अनुभूतियों को माध्यम बनाते रहें। राकेश ने "आषाढ़ का एक दिन" नाटक के माध्यम से मानव की आशा, आकांक्षा और समय के द्वन्द को प्रस्तुत किया है। कालिदास समकालिन यथार्थ को प्रस्तुत करता है।

मानव संसार में जन्म लेता है। सुख-सुविधाओं को भोगता है। सफलता से जीवन गुजारता रहता है लेकिन मन ही मन में कहीं एक अनबुझी चाह रहती है। यह चाह और चाहत पूरी कर लेने में असमर्थ परिस्थिति के बीच संघर्ष होता रहता है। यही संघर्ष अन्तर्द्वन्द है जो व्यक्ति की उलझने बढाता है। अपने आप से जुझता व्यक्ति सोच विचारशक्ति खो देता है। सामान्य और असामान्य व्यक्ति में हमेशा यह फर्क रहता है कि सामान्य व्यक्ति ऐसी द्वन्दात्मक परिस्थिति से टकराकर टूट जाते हैं और असामान्य व्यक्ति अपने विचार और कृति पर अड़िग रहते हैं, स्थिर चित्त रहकर अपना मार्ग चुनता है। इसका सबसे बढिया उदाहरण है इस नाटक के बुद्ध और यशोधरा। ऐसे लोगों के निर्णय शक्ति पर बाह्य या आंतरिक द्वन्द असर नहीं करता।

मानवी मन की यही सत्यता है। राकेश ने "लहरों के राजहंस" नाटक में ऐसे ऐतिहासिक पात्रों को यथार्थ की चौखट में रखा है ताकि ये पात्र अपनी कालानुरूप पहचान भूलाकर आधुनिक युग के धरातल पर खडे दिखायी दे। राकेश आत्मपरक साहित्यकार थे जो मानवीय शाश्वत अनुभूति और संवेदना को गहराई से व्यक्त करते थे। यह नाटक कामना का विज्ञान प्रस्तुत करता है। नाटक की कथावस्तु मानवीय इच्छा और उनके आचरण को प्रस्तुत करती है।

राकेश के नाटक "लहरों का राजहंस" का नायक नन्द है। "आषाढ़ का एक दिन" नाटक का नायक कालिदास पूर्णतः भावना और कल्पना जगत् में खोया पुरूष है जो सत्य परिस्थिति का सामना नहीं करता है। पलायन का मार्ग अपनाता है। नन्द, कालिदास से एक कदम आगे चल पडा है, परिस्थिति से टक्कर लेने का साहस करता है।

नन्द पार्थिव और अपार्थिव आकर्षणों के बीच फँस गया है। नन्द अपनी इच्छा और अपेक्षाओं को स्पष्ट रूप से समझ नहीं पाता है। नन्द कामना का एक और धरातल प्रस्तुत करता है। भौतिक सुख के साथ शान्ति की कामना करता यह नन्द पूर्णतः आधुनिक युग के व्यक्ति की मानसिकता को व्यक्त करता है।

नन्द दूसरों की अपेक्षाओं को पूरा करता रहता है, अपने आप में घुटता रहता है। यह घुटन इसी कारण है कि नन्द स्वयं अपनी इच्छाओं को स्पष्ट रूप से समझता नहीं है। यथासम्भव नन्द अपनी कामनाओं को दबाये रखता है और यह दबाव या घुटन छोटे से आघात से विस्फोट में बदलती है। मानसिकता को दबाता नन्द स्वयं को निरन्तर अकेला महसूस करता है। सुन्दरी नन्द की पत्नी है। सुंदरी का अपना अलग जग है। नन्द को समझना सुंदरी के मस्तिष्क में है ही नहीं। पति और पत्नी अगर एक दूसरे को मानसिकता समझे तो परिवार की आधी समस्याएँ नष्ट हो जायेगी। यही तो जीवन की विड़म्बना है कि न नन्द सुंदरी को समझ रहा है न सुंदरी नन्द को।

नन्द सही आधार की तलाश में दोनों बिंदुओं के बीच झूल रहा है। नन्द की कृति का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों से लगाता है। जब नन्द कोई स्वतन्त्र विचार से दिशा खोजता है उसी वक्त कोई व्यक्ति आकर नन्द पर अपना प्रभाव छोडती है और नन्द के पैर डगमगाने लगते हैं। सही कृति करने पर भी स्वयं को गलत या अपराधी समझता है। नन्द के विचार और कृति में कोई तालमेल नहीं रहता है। नन्द ऐसे व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी अलग पहचान बनाने के लिए संघर्षरत हैं। हाथों में सुंदरी जैसी पत्नी है लेकिन पत्नी के साथ नन्द सुखी नहीं है। बुद्ध विरक्ति का बिंदु है लेकिन मोहपाश से मुक्त होना नन्द

के लिए सहज साध्य नहीं है। नन्द का संघर्ष अपने आप से है। जीवन के चक्रव्यूह में उलझ गया है।

मध्यवर्गीय व्यक्तित्व की एक विशेषता होती है, ये लोग व्यवस्था से बार-बार जुड़ने और पलायन करने को विवश हैं। जंगल में व्याघ्र से जूझने वाले नन्द का आक्रोश मध्यवर्गीय व्यक्ति का आक्रोश है। यह सब इसलिए है कि यह लोग स्वयं कुछ कर नहीं सकते, व्यवस्था इन लोगों को ऐसी अवस्था में लाकर छोड़ती है कि अपने ही बाल नोचने के अलावा कुछ कर ही नहीं सकते। क्योंकि जीवन के संघर्ष के बीच वह पूरी तरह थका हारा और टूटा हुआ है।

नन्द पार्थिवता के अन्दर से अपार्थिव को पाना चाहता है। अन्त तक आत्मरक्षा और आत्मविनाश के बीच एक साथ जीता है। सुख और शांति की खोज में भटकता है पर सुख नहीं मिल पाता है। जीवन के आरम्भ से सँजोयी सम्भावनाएँ यथार्थ से टकराकर चूर-चूर हो जाती है। नन्द और सुन्दरी के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध हैं, यहाँ कारण है आसक्ति और अनासक्ति का। आधुनिक युग में परिस्थिति ऐसी ही है कि स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध तनावपूर्ण हैं। पुरूष के साथ नारी स्वातंत्र्य का संघर्ष है। नारी अपने आप को पुरूष के समकक्ष देखना चाहती है। यह संघर्ष का कारण है। नन्द और सुंदरी एक दूसरे के साथ रहकर भी अकेलापन महसूस करते हैं। अलगाव, अजनबीपन, अकेलापन ये सब आधुनिक व्यक्ति की नियति बन गये हैं। इसी परिस्थिति को चर्चा नन्द-सुंदरी प्रतीक द्वारा राकेश ने की है।

संत्रास और तनाव से पीड़ित व्यक्ति के सामने एक अंतिम पर्याय बचता है आत्महत्या का। नन्द जीवन की विसंगति को तीव्रता से अनुभव करके आत्महत्या के उद्देश्य से बाघ से निहत्थे भीड़ जाता है। यह आधुनिक मानव की पीड़ा है जो नन्द के युग से चली आ रही है। यहाँ नन्द का वक्तव्य महत्वपूर्ण है - "....मन में मृत्यु का भय है....किसी भी प्रकार की मृत्यु का.....परन्तु उस भय के साथ एक आकर्षण यह दिया गया है।"[5]

नन्द प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच घिरी द्वन्द्वात्मक मानव भावना का प्रतीक है और सुंदरी भोग या प्रवृत्ति का प्रतीक है। नन्द और सुंदरी का संत्रास आधुनिक स्त्री-पुरूष का संत्रास है जो विसंगतियों को झेलने में विवश है। नन्द और सुंदरी की नियति स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की स्वाभाविक परिणति है जो अलग समय और अलग परिस्थिति में उन्हें अपने इशारे पर चलने के लिये बाध्य करती है।

"लहरों के राजहंस" नाटक द्वन्द्व के दो स्तरों पर चलता है, एक स्तर जहाँ मुख्य पात्र स्वयं अपनी विरोधी मानसिकता को झेलता है और दूसरी बात, जिसमें वह औरों के साथ विरोध में आता है।

नन्द और सुन्दरी ऐसे बिंदु पर खडे हैं जहाँ से एक ही मार्ग दिखायी देता है - अलगाव का। विफल दाम्पत्य जीवन का अंतिम परिणाम एक दूसरे से अलग होना है। नन्द और सुन्दरी जीवन के ऐसे ही मोड़ पर खड़े हैं। अपने अस्तित्व के लिए लड़कर थक गये हैं, परिस्थिति से सामना करते-करते टूट गये हैं। यही आधुनिक युग के दाम्पत्य की पीड़ा है।

"आधू अधूरे" समकालिन जिंदगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक है। सातवें दशक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाटक "आधे अधूरे" रहा है। राकेश ने अपने पूर्व नाटकों की तरह किसी ऐतिहासिक आधार को न ग्रहण कर समकालिन जीवन की संवेदनाओं को सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है। "आधे अधूरे" आज के जीवन को आज के मुहावरों में ही प्रस्तुत करता है। सन 1969 में प्रकाशित यह नाटक वर्तमान जीवन के यथार्थ का चित्रण सफलतापूर्वक करता है। इस नाटक में मध्यम वर्ग के परिवार की संघर्षपूर्ण कहानी नाटकीयता से प्रस्तुत की गयी है। राकेश ने नाटक के माध्यम से जिन्दगी को समस्याओं को सीधे टकराने का प्रयास किया है।

पूर्व जमाने में परिवार संयुक्त होते थे। घर का एक बड़ा बूढा बुजुर्ग घर का आदरस्थान रहा करता था। अन्य परिवार के सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते थे। औद्योगिक विकास के साथ परिवार आर्थिक समस्या के कारण विघटित होते गये। परिवार का अर्थ सिर्फ एक छत के नीचे रहना इतना ही संकुचित नहीं है, व्यक्ति के मन एक-दूसरे से अजबीपन महसूस कर रहे हो तो एक छत के नीचे

रहने वाले परिवार विघटित परिवार है। आदमी का एक-दूसरे के प्रति अजनबी होना, जीवन के प्रति उदासीन होना ये सभी समस्यायें मानव के मन से उपजती है। बाह्य परिवेश इन समस्याओं को और ज्यादा तीक्ष्ण बना देता है। आदमी जब हर समय निराशा झेलता रहेगा तो जीवन के प्रति उदासीन हो जायेगा। मनुष्य की सभी आकांक्षाएँ पूरी नहीं होती। जीवन में अभाव होते ही हैं। ये अभाव अनेक प्रकार के हो तो भी इनसे उत्पन्न पीड़ा एक ही होती है। "आधे-अधूरे" नाटक यही विघटन पीड़ा, अभाव और संवेदनशील व्यक्ति के विचार शक्ति को निगलती आधुनिकता की ओर प्रकाश डालती है। समस्याएँ किसी खास वर्ग से संबंधित नहीं होती। किंतु मध्यम वर्ग राकेश का चहेता वर्ग रहा है। राकेश ने ज़्यादातर मध्यमवर्गीय परिवारों की समस्या को उजागर किया है।

मध्यवर्गीय विसंगति का कटु यथार्थ चित्रण गहरी नाटकीय स्थिति के द्वारा अंकित किया है। आज परिस्थिति के सामने मनुष्य को विवश होना पड़ा है। आर्थिक विपन्नता के कारण परिवार विघटित हो रहे हैं। व्यक्ति-व्यक्ति से दूर होता चला है। इनसे तनावपूर्ण स्थिति निर्माण होती है। अभाव एवं घुटन भरे वातावरण में आदमी जीवन काटने की कोशिश करता है। इस नाटक में एक ही रंग है "यथार्थ" का। यह नाटक सौ प्रतिशत यथार्थवादी नाटक है।

औद्योगीकरण से अर्थ-व्यवस्था दो खण्डों में विभाजित हो गयी। इन दो खण्डों की चक्की में मध्यवर्ग पीसता गया। ये लोग न तो उच्चस्तर अपनाने में समर्थ हैं क्योंकि आर्थिक अभाव की समस्या है और न तो अपने सहज स्तर से नीचे उतर सकते हैं। घुटन और मुखौटा पहनकर जीना, इसके सिवाय हाथ में कुछ बचता नहीं है। इस परिस्थिति से बाहर निकलने की नाकाम कोशिश और परिवार में अशांति, आदमी को परिस्थिति से ज्यादा नाकाम और निराश बनाती है। जैसे घर की परिस्थिति वैसा घर के सदस्यों का मानसिक स्वास्थ्य होता है। घर के सदस्य मानसिक तनाव निराशा मन में लिए जीते हैं तो घर का माहौल भी उदास हो जाता है। घर के बाह्य परिवेश पर व्यक्ति का अधिकार नहीं चलता वह जैसा है वैसा है लेकिन घर की चार दीवारी के अन्दर मनुष्य सदैव सुख-शांति की कामना करता है।

राकेश के लिए "घर" महत्वपूर्ण बात थी। राकेश का पूरा जीवन घर की तलाश में बीत गया। राकेश ने तीन शादियाँ रची। सिर्फ घर के लिए - तीसरी शादी थोड़ी सफल हो गयी। थोड़ी सफल इसलिए कि घर तो मिल गया लेकिन मृत्यु राकेश को ले गयी। अपनी पत्नी अनिता से राकेश एक ही बात कहते थे - "मुझे घर चाहिए, अन्ना घर। मुझे जिंदगी में और सब कुछ मिला है सिर्फ एक घर नहीं मिला। मैं कहाँ कहाँ इसके लिए नहीं भटका ? क्या क्या इसके लिए नहीं किया ? लेकिन पता नहीं क्यों "घर" नाम की चीज मुझसे हमेशा रूसवा रही। दो बार मैंने इसे पाने का अपने में विश्वास भरा और दोनों ही बार मुझे खुद ही उससे भाग जाना पड़ा।"[6]

जिस राकेश के मन में ऐसा घर था जहाँ सुख हो, शांति हो, उसी राकेश के साहित्य में चित्रित घर पूर्णतः टूटा और बिखरा है। राकेश की मानसिकता इस नाटक द्वारा व्यक्त हो गयी है। "घर" की चाहत और घर मिलते ही घर से दूर भाग जाने की नियति यह विड़म्बना नहीं तो क्या है ? यह संवेदनशील व्यक्ति की नियति है।

"आधे अधूरे" नाटक के पात्र राकेश के मन में उठने वाले सवालों को लेकर हमारे सामने अपनी दलील पेश करते हैं। यह सब नियति द्वारा निर्णित है जैसी परिस्थिति सामने है उसी के साथ लोग झगड़ रहे हैं। यहीं से शुरू होती है समस्याओं की कडी। चार दीवारी और उसमें संत्रास स्थिति में रहते लोग। जो भागना चाहते हैं पर वापसी के लिए विवश हैं। "अजीब है आज का इन्सान, खुद अधूरा होते हुए भी वह दूसरों में पूर्णता खोजता फिरता है, पूर्णता जो नितांत काल्पनिक और खोखली है। हम इसी की खोज में भटकते हैं और नतीजे में अपनी और अपनों की जिन्दगी तबाह करते हैं।"[7]

स्वयं अपूर्ण होते हुए भी दूसरों में पूर्णता खोजने वाले व्यक्तियों में "आधे अधूरे" नाटक के पात्र सावित्री और महेन्द्र हैं। यह दाम्पत्य मध्यवर्गीय विकट स्थितियों को झेल रहा है। महेन्द्र और सावित्री का घर आर्थिक अभाव के कारण उखड़ चुका है। महेन्द्र बिजनेस में सब कुछ खो बैठा है। परिवार का निरूपयुक्त सदस्य है

जो घर का एक खम्बा या पुरानी चीज है, जिसके साथ अन्य पारिवारिक सदस्यों की भावनिक मेलजोल नहीं है। घर का पुरूष अगर निकम्मा हो तो घर में उसकी कीमत कुत्ते-बिल्ली से ज्यादा नहीं होती। समाज की रूढ़ ऐसी है कि पुरूष धनार्जन करें और स्त्री गृहस्थी सम्हाले।

सावित्री आधुनिक नारी का प्रतीक है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार है। सावित्री निड़र भी है अपना टूटा परिवार सँवारने की हर कोशिश करती है। नारी हमेशा उपभोग का साधन मानी जाती है। "न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति" के अनुसार स्त्री को स्वतंत्रता का अधिकार नहीं था। पूर्व काल में स्त्री सति प्रथा की बलि होती थी। आधुनिक स्त्री अपने आप को पिता, पति और पुत्र के दास्यत्व से मुक्त हो गयी है। यह नारी झुकना नहीं चाहती, झुकाना चाहती है। आत्मसम्मान की रक्षा के लिए सजग रहती है।

सावित्री आज के युग की स्वावलंबी नारी है। राम और श्रवणकुमार की तरह सीता-सावित्री का युग बीत चुका है। शिक्षा के साथ समाज पर विदेशी प्रभाव पड़ता रहा है। विदेश में स्त्री-पुरूष बंधनमुक्त होते हैं। यह बंधमुक्तता सावित्री को अपने मार्ग से भटकाती है। सावित्री की नजर में महेन्द्र काफी निकम्मा, लिजलिजा और चिपचिपा आदमी है। पूर्ण पुरूष की खोज में सावित्री नैतिकता के बंधन तोड़ चुकी है। ऐसी चीजों के लिए पाश्चात्य खुली नैतिकता आधार देती है। परिणामतः घर का स्वास्थ्य टूट जाता है। पूरा परिवार बिखर जाता है। दोनों लड़कियाँ मार्ग से भटक गयी है। विदेशी प्रभाव में आकर युवा पीढ़ी तेजी से नैतिकता के बंधन तोड़ रही है। अगर सावित्री परिवार के लिए कुछ स्त्रीत्व के बंधन में रहती तो दोनों युवा लड़कियाँ न बिगड़ती। बड़ी लड़की बिन्नी अपनी माँ के प्रेमी के साथ घर से भागकर ब्याह करती है, और इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है ?

छोटी लडकी, नासमझी के उम्र में ही यौन-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ती है। ऐसी बातों पर चर्चा करती है। विदेश में कुमारी माता का प्रश्न तेजी से समाज में हलचल पैदा कर रहा है। छोटी लड़की किन्नी इस समस्या की प्रथम सीढ़ी पर खड़ी है। आज समाज में युवक और युवतियों के सामने कोई आदर्श नहीं है, कोई

भविष्य नहीं है। समाज बेकारी और आर्थिक विपन्नता से तंग आ गया है। ये निकम्मे लड़के लड़कियाँ टाईम-पास के लिए ऐसी सेक्स भरी किताबों का सहारा लेते हैं। धीरे-धीरे इन चीजों की आदत पडती है। समाज में गंदगी फैलाने के लिए एक विंदू काफी है। युवा पीढ़ी के तीन प्रतिनिधि "आधे अधूरे" नाटक में है, जो भविष्य की खोज में है लेकिन परिवार का माहौल उन्हें अंधेरे की तरफ धकेलने में सहायक हो रहा है। आज की आधुनिक पीढी गर्द, ब्राऊन शुगर की शिकार हो गयी है। युवावस्था एक ऐसी अवस्था है चिकनी मिट्टी की तरह, जैसा आकार देते जाओ, उसी आकार में ढलती है।

घर का एकमात्र पुत्र अशोक है। बेकारी युवक के मस्तिष्क को भी बेकार चीज बनाती है। दिन भर पुस्तकों से तस्वीरे काटता बैठता है। खाली समय का उपयोग उद्योग सेंटर वाली वर्णा के पीछे घूमने में व्यस्त करता है। इस लड़के के भविष्य के लिए उसकी माँ सावित्री सिंघानिया, जुनेजा जैसे बॉस लोगों को घर तक लाती है। ये लोग समाज की सड़न है। सत्ता हाथ में होती है, शिक्षा हो या न हो फर्क नहीं पड़ता। ऐसे उच्चवर्गीय लोग असहाय नारी का फायदा उठाते हैं। अपने निजी स्वार्थ के लिए कोई परिवार बिखर रहा है इसकी उन्हें तनिक फिक्र नहीं होती।

राकेश ने सिंघानिया द्वारा "बॉस" जमातो पर तीखा व्यंग्य कसा है। अशोक सिंघानिया का "वन मानूस" के रूप में उसका कार्टून बनाना उस वर्ग के प्रति राकेश का घृणाभाव व्यक्त करता है। सावित्री के अपने मित्रों से सम्बन्ध होना आर्थिक अभावों का परिणाम है। ऐसे उच्चवर्गीयों से सम्बन्ध बना कर सावित्री अपनो स्थिति से ऊपर उठना चाहती है। समाज में जगमोहन जैसे व्यक्ति हैं जो हर स्त्री के साथ खेल रचते हैं। खेल समाप्त होने पर उससे कोई सरोकार नहीं रखना। अभाव पूर्ति के सपनों के लिए सावित्री अपना घर छोड़ने के लिए तैयार होती है, तो यही जगमोहन कुशलता से उसे परे हटा देता है।

इस प्रकार उच्चवर्ग की अवसरवादिता, खोखलापन, घटियापन और कामुकता को उजागर करने में राकेश सफल रहे हैं। ऐसे वर्ग पर मध्यवर्ग निर्भर रहने के

लिए विवश है यही सत्य परिस्थिति है। सावित्री का नैतिक पतन का प्रथम कारण आर्थिक अभाव ही है।

"आधे अधूरे" नाटक में टूटते परिवार और बिखरे घर का यथार्थ चित्रण है। प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार से जुड़ा होता है। परिवार के सभी सदस्य आर्थिक मानसिक एवं रक्तगत सम्बन्ध से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। पूर्व काल के संयुक्त परिवार मूल्य और आदर्शों पर चलते थे। औद्योगिक क्रान्ति के साथ परिवार विघटित होने लगा। इस बात का परिणाम हमारे सामने है कि पारिवारिक मूल्य तथा आदर्शों में विकृतता आ गयी है। आधुनिक युग मे पारिवारिक मूल्यों का नाश हो गया है। नैतिकता गौण स्थान पर है। संदेह तथा अनास्था के कारण पारिवारिक जीवन नरक के समान हो गया है। पाश्चात्य प्रभाव से सामाजिक मर्यादाओं को बदल दिया है। पुरूष वर्ग के साथ नारी भी विकास की दिशा की ओर चल रही है। अवैध यौन-सम्बन्धों को मुक्त संबंध कहा जाता है, तथा अपराध-बोध उत्पन्न न हो। पश्चिमी सभ्यता के संक्रमण से स्त्री-पुरूष संबंधों में नैतिकता का कोई मूल्य रहा नहीं है।

ऐसी पीडाओं को "आधे अधूरे" नाटक का परिवार भोग रहा है। ऐसी स्थिति परिवार को विघटित करती है। परिवार के वातावरण में घुटन महसूस होती है। इस परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से तंग आ चुके हैं। वे "घर" नामक चीज से दूर भागना चाहते हैं लेकिन वापस आने के लिए विवश भी हैं। यह विवशता एक ही छत के नीचे रहते व्यक्तियों में घृणा, कुंठन पैदा करती है। पूर्व काल में घर का बड़ा बुजुर्ग व्यक्ति सभी निर्णय लेता था। अब ऐसी स्थिति नहीं रही। परिवार का मुख्य सदस्य महेन्द्रनाथ नाकारा व्यक्ति है। इसका प्रथम कारण यह है कि महेन्द्र अपनी पत्नी की कमाई पर जीता है। पत्नी की नज़र में महेन्द्र सिर्फ बार-बार पिसा जाने वाला "रबड का टूकडा" मात्र है। उसी नजर में महेन्द्र "नाशुक्रा", "घरघुसरा" व्यक्ति है और एक ऐसा "नामुराद मोहरा" है जो न स्वयं चलता है ना दूसरों को चलने देता है।

सावित्री पर निर्भर महेन्द्र की स्थिति दयनीय है। घर बैठा है इसलिए पत्नी से ताने सुनने पडते हैं। छोटी लड़की के लिए दूध न देने के कारण से एक सामान्य नौकर की तरह जली कटी सुननी पड़ती है। सावित्री घर चलाती है इसलिए पति घर अपना प्रभुत्व स्थापित करती है।

इस नाटक में ऐसे घर की कहानी है जिसमें कुंठा घुटन और तनावपूर्ण हर वक्त छाया रहता है। पति-पत्नी के टूटे सम्बन्ध घर के वातावरण को जहरीला बना देते हैं। बड़ी लड़की हमेशा जिसे "हवा" कहती है इस हवा के कारण इस घर का प्रत्येक सदस्य एक-दूसरे से कटा-कटा-सा है। बच्चों के अपने-अपने प्रॉब्लेम्स हैं लेकिन सभी प्रॉब्लेम की जड़ इस घर में है। बिन्नी माँ की प्रेमी से विवाह करने के पश्चात सुखी नहीं हैं, वैसे उसे अपने पति से खास शिकायत नहीं है। अशोक को माँ से घृणा है क्योंकि माँ का अन्य पुरूषों के साथ सम्बन्ध है। सावित्री इस बात का उत्तर देती है कि यह सब जो वह कर रही है अपने घर की भलाई के लिए है। अशोक और बिन्नी एक ही बात महसूस करते हैं, "एक खास चीज है इस घर के अंदर जो····। घर की हवा में घुटन और बिखराव है।" "घर" नाम से दिल में एक प्यार भरी छवी उभरती है उसका नामोनिशान भी इस घर में नहीं है। परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे से कोसों दूर हैं।

सावित्री और महेन्द्र अपने बच्चों के बिगड़ते बर्ताव को जानते हैं। लेकिन उनकी जिनकी जिम्मेदारी एक दूसरे पर थोप रहे हैं। एक-दूसरे की गलती की ओर अँगुली उठाते रहते हैं। बड़ों के व्यवहार का बुरा असर बच्चों पर होता है। प्रत्येक सदस्य अपना बेढंगा व्यवहार करता रहता है, बाकी सदस्य उस व्यवहार को स्वभाव मानकर अनदेखा कर देते हैं। एक-दूसरे की पोल खोलना चाहते हैं, सभी दोषी है। बच्चों के मन में विद्रोही भावना दिखायी देती है। बच्चों के सामने कोई आदर्श व्यक्ति अगर नहीं तो उनसे उच्च आचार विचारों की अपेक्षा कैसी की जाय ?

सभी सदस्य अस्वस्थ और अस्थिर हैं। दूसरे पर आरोप करना अपने दोषों को छुपाने का साधन है। हर कोई "घर" के लिए कुछ न कुछ करता है जो सब

दिखावा है। सभी घर के परिवेश से मुक्ति चाहते हैं। सभी एक-दूसरे से टकराकर बिखर जाते हैं। सावित्री, महेंद्र, किन्नी और अशोक अपने अस्तित्व के लिए परेशान हैं। टकराकर चूर-चूर होना इन सदस्यों की नियति है। राकेश ने बिखरे परिवार का, विफल अनुभूतियों का सफल चित्रण किया है। मनुष्य के लिए घर एक अत्यंत आवश्यक चीज है। "आधे अधूरे" नाटक के सदस्यों को ऐसे घर की चाह है जो अपनी अर्थवत्ता को सार्थक बनाये। सावित्री का कथन कितना भयावह सत्य बोलता है - "एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है ? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन सी जरूरत ? अपने अन्दर के किसी को····एक अधूरापन कह लीजिए उसे····उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए····अपने में···· पूरा होना होता है।"

कितना सार्थक यथार्थ वक्तव्य है सावित्री का। सीधे समस्या का उजागर करता है।

आधुनिक सभ्यता में दाम्पत्य जीवन की पारंपारिक मान्यताएँ टूट चुकी हैं। राम जैसा पति और सीत सावित्री जैसी पत्नी आज समाज में शायद व्यंग्यपूर्ण विषय बन सकते हैं। पति और पत्नी दो भिन्न व्यक्तित्व हैं जिनकी अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ हैं। दोनों अपनी समस्या का हल खोजने के लिए अलग मार्ग ढूँढते हैं। इस बात का परिणाम यह होता है स्त्री-पुरुष एक दूसरे को समझते नहीं तथा एक-दूसरे को एक सूत्र में नहीं बांधते। स्वयं को अपूर्ण होते हुए भी दूसरे में पूर्णत्व की खोज करते रहते हैं। दोनों का अधूरापन पूर्णत्व की खोज में और भी खंडित होता जाता है। एक ही छत के नीचे रहकर दूरी का अनुभव करना और अजनबीपन से पीड़ित रहना इन सभी के बावजूद एक-दूसरे को सहने के लिए विवश होना नियति बन गई है।

अपनी स्वतंत्रता तथा समस्याओं से मुक्ति की लालसा है, दूसरी ओर एक दूसरे के साथ जूझने की नियति है। एक बात सच है अलगाव को बनाए रखते कोई भी दाम्पत्य एक-दूसरे के साथ जीवन-यापन नहीं कर सकता। स्वतंत्रता की कल्पना दोनों को ऐसे मार्ग पर ला कर छोड़ती है कि वहाँ से आगे निराशा और

नैतिक पतन के अलावा कुछ नहीं मिलता है। सामाजिक दृष्टि और स्वास्थ्य के लिए पति-पत्नी का एक साथ रहना आवश्यक है। ऐसी अवस्था में कोई एक अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिये दूसरे का हाथ छोड़ दे तो यह बात परिवार एवं समाज के लिये हानिकारक है। सभी समस्याओं को मन में दबाये रखे और एक-दूसरे के साथ रहे यह जीवन की विसंगति है। "आधे अधूरे" नाटक में दाम्पत्य जीवन का यह द्वन्द गहराई के साथ अंकित किया है। एक-दूसरे से अजनबी लेकिन साथ रहने के लिए विवश दाम्पत्य का चित्रण किया गया है। सावित्री और महेन्द्र ऐसे ही दाम्पत्य हैं जिनके दाम्पत्य जीवन की विसंगति एक-दूसरे से टकराती रहती है। दोनों का दाम्पत्य जीवन जटिल और उलझनों से भरा है। सावित्री महेन्द्र पर सदैव आरोप करती है कि वह "नाशुक्रा", "घर घुसरा" और "निकम्मा" है। घर के बुरे हालत महेन्द्र की वजह से बन गयी है। घर का प्रमुख पुरूष निकम्मा हो तो स्त्री को अर्थार्जन करना पड़ता है, अतः सावित्री स्वयं नौकरी करके गृहस्थी सँभालने का प्रयत्न कर रही है।

बेकार बेटे अशोक की नौकरी के लिए सिंघानिया जैसे नीच व्यक्ति से रिश्ता बनाती है। महेन्द्र का हाथ पे हाथ धरे बैठना सावित्री के लिए सबसे बड़ी समस्या है। महेन्द्र को वह स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में देखना चाहती है लेकिन महेन्द्र "सिर्फ दूसरों के खाली आने भरने की चीज है"। जो व्यक्ति अपनी शादी की बात अपने मित्र द्वारा करवाता है वह निःसंशय व्यक्तित्वहीन है। महेन्द्र में अपना निर्णय लेने की क्षमता तक नहीं है। इन सब बातों से सावित्री तंग आ चुकी है।

सावित्री की घुटन एवं कुण्ठाग्रस्त अवस्था का मूल कारण है महेन्द्र का आश्रित होना और घर के आर्थिक हालात। इसी के कारण सावित्री घर के बाहर पूर्ण पुरूष की खोज करती है। यह बात परिवार में संशय और कड़वाहट का निर्माण करती है और दाम्पत्य जीवन में दरार पड़ती है। दोनों व्यक्तित्व अपने आचरण का समर्थन करते अपने स्थान पर अड़िग हैं। "अपूर्णत्व से पूर्णत्व की खोज निरन्तर जारी है। विडम्बना यह है कि प्रत्येक पूर्णत्व अपूर्णत्व का एहसास देता है, बच

जाती हैं केवल यातनाएँ, क्षोभ और आतंक।"[8] सावित्री के बाहर अन्य पुरूषों के साथ बढ़ते सम्बन्ध, महेन्द्र के लिए संत्रास और चिडचिड़ाहट की स्थिति पैदा करते हैं। यह बात अलग है कि घर की भलाई के लिए सावित्री यह सब कर रही है पर एक पति यह बातें कैसे सहन करें ?

समाज में बॉस नाम का ऐसा उच्च वर्ग है जो सावित्री जैसे अनेक नारियों की असहायता का फायदा उठाता है। महेन्द्र भी एक पुरूष है, पुरूष ही पुरूष को पहचानता है। महेन्द्र का स्पष्ट आरोप है कि कोई सिंघानिया, जुनेजा सावित्री की भलाई नहीं चाहता है, सभी की नजर सावित्री के शरीर पर है। सिंघानिया यह बात सिद्ध भी करता है। घर आता है अशोक की नौकरी के लिए और नजर टिकाई है बिन्नी पर। महेन्द्र और सावित्री के एक-दूसरे के प्रति आरोप-प्रत्यारोप दाम्पत्य जीवन में कड़वाहट पैदा करते हैं।

महेन्द्र सावित्री के साथ नृशंसता से पेश आता है। कभी दरिन्दा बनता है कभी हीन-दीन मिट्टी का पुतला बनता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य महेन्द्र के साथ सीधे ढंग से बात नहीं करता। सावित्री महेन्द्र को कभी लायक समझती ही नहीं। बाहर के व्यक्तियों से सभी कुछ पूर्ण पुरूषत्व समेटना चाहती है। प्रत्येक मनुष्य में कोई न कोई अपूर्णता है। एक क्षण यह भी आता है कि सावित्री अपना घर परिवार छोड़ने के लिये घर से बाहर निकलती है। लेकिन परिस्थितिवश उसे लौटना पड़ता है। महेन्द्र यह कोशिश कई बार कर चुका है। दोनों घर वापस लौटने के लिए विवश हैं। एक दूसरे से तंग आ गये हैं फिर भी एक-दूसरे के साथ रहने के लिए, एक दूसरे को सहने के लिए विवश हैं। यह सबसे बड़ी दाम्पत्य जीवन की विसंगति और विड़म्बना है।

"आधे अधूरे" नाटक में विसंगति बोध है। पात्रों के माध्यम से व्यंग्य का सहारा लेकर आधुनिकता का संकेत दिया है। सावित्री मनोज को पूर्ण पुरूष रूप में चाहती है और मनोज सावित्री की बड़ी लड़की बिन्नी से ब्याह करता है। यह प्रक्रिया आधुनिक युग के स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के नैतिकताहीनता का यथार्थ रूप है। इस नाटक में राकेश ने आधुनिक जीवन स्थिति के बोध को समस्त कटुता,

अर्थहीनता और विवशता के साथ सफलता से अभिव्यक्त किया है।

मध्यवर्ग का व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार अपना संसार बसाना चाहता है। वर्तमान जीवन की परिस्थितियाँ मार्ग में बाधा बनती है। इस बात से मन में न होते हुए भी संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष अस्तित्व रक्षण के लिए अनिवार्य है। अस्तित्व की समस्या और अन्य समस्याओं का बोझ व्यक्ति को आंतरिक स्तर पर तोड़ देता है। इसप्रकार "आधे अधूरे" नाटक वर्तमान जीवन की भयावह त्रासदी बनकर रह गया है।

राकेशजी ने अपने तीनों नाटकों में यथार्थ का निर्वाह किया है। "आषाढ़ का एक दिन" में सर्जक की पीड़ा, अंतर्द्वन्द चित्रित करते हुए बताया है कि सर्जक को परिवेश से कटकर राज्याश्रय में अपनी प्रतिभा गवा देता है। रोमानी भावबोध के साथ आधुनिक भाव बोध चित्रित हुआ है। "लहरों के राजहंस" में अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण है और "आधे अधूरे" में भी। मानवी संबंध तथा पात्रों के आंतरिक चित्रण पर राकेश ने बल दिया है। नाटक का मूल व्यक्ति और परिवेश को लंब माना है। राकेश ने भारत के विभाजन के बाद सामाजिक, आर्थिक, विषमता को भोगा, वैवाहिक संबंधों की दरार, ऊब तथा निरर्थकता को जाना था। इनका चित्रण होना स्वाभाविक था। डा॰रीताकुमार ने "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में" लिखा है - राकेश ने अपने व्यक्तिगत दाम्पत्य संबंधों से प्राप्त तनाव, घुटन, विसंगति, परिवेश और पराजित नियति के कटु अनुभवों को ही बार-बार विभिन्न रूपों में मूर्त करने के प्रयोग किये हैं। "आषाढ़ का एक दिन" के कालिदास "लहरों के राजहंस" के नंद की अनिश्चयात्मक उलझन व द्वंद्वपूर्ण स्थिति तथा "आधे अधूरे" के महेन्द्रनाथ की छटपटाहट, बौनायनऔर चाहकर भी संत्रासपूर्ण वातावरण से मुक्त न हो पाने की करूण नियति राकेश के ही व्यक्तित्व और जीवन के परोक्ष चित्र है।"

राकेश का यथार्थ आंतरिक यथार्थ है। उसमें परिस्थितियों के चित्रण की अपेक्षा परिस्थितियों से दबे मनुष्य की घुटन, द्वंद्व और पीड़ा का चित्रण है। इस आंतरिक यथार्थ के चित्रण में भी उन्होंने मानवीय संबंधों, विशेषतः स्त्री-पुरूष संबंधों

का परिवर्तित परिस्थितियों तथा मानदंडों के आधार पर सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्ष का उद्‌घाटन किया है। यही कारण है कि उनके नाटकों में सामाजिक यथार्थ एक सीमित क्षेत्र का यथार्थ है। लेकिन जिस यथार्थ का आपने चित्रण किया है उसमें अनुभव की गहराई और व्यापकता नज़र आती है।

संदर्भ

1. आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश, पृ.48

2. वही, पृ.106

3. वही, पृ.

4. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक - नेमिचन्द्र जैन, पृ.101

5. वही, पृ.103

6. चंद सतरें और - अनिता राकेश, पृ.75

7. नटरंग - संपादक नेमिचन्द्र जैन, पृ.40-41

8. आधुनिकता के रचना संदर्भ - डॉ.भगवानदास वर्मा, पृ.102

9. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में - रीताकुमार, पृ.366